Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 9 | SEPTEMBER 2024

स्वामी प्रियतमानन्दसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र में ब्रह्म-बोध

नन्दराम शर्मा [1]

[1] पी-एच.डी. संस्कृत शोधार्थी, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर.

ABSTRACT:

-

KEYWORDS:

-

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
14th September 2024	15th September 2024

ब्रह्म-बोध-

जगोपाधिविनिर्मुक्तः यात्रानन्दः यशस्विनः । दुग्धप्रियः वरप्रदः दानप्रियः दयानिधिः ॥

चिदान्दः चित्रगेयः चमत्कारः प्रजेश्वरः । चराचर निवासी च प्रत्यक्षपरमेश्वरः ॥ 1

भारतीय दर्शन के मनीषी डॉ. राधाकृष्णन के 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत हैं- काल का चक्र तीव्र गति से घूम रहा है, जीवन क्षणभंगुर है, और सब कुछ परिवर्तन के अधीन है। कोई भी वस्तु सत् नहीं है, सब कुछ प्रवाह रूप है। ऊपर की ओर उठने का संघर्ष, यथार्थसत्ता की खोज, सत्य को जानने की चेष्टा इन सबका आशय यह है कि प्रवाहरूप जीवनधारा ही सब कुछ नहीं है। तर्कशास्त्र सम्बन्धी, विश्व - विज्ञान सम्बन्धी और नीतिशास्त्र सम्बन्धी सभी हेतु इस विषय की ओर निर्देश करते हैं कि इस सान्त जगत् से कहीं अधिक महान कोई न कोई सत्ता अवश्य है। सान्त जगत् की सीमाओं से बचकर निकल भागने का प्रयत्न उस चेतनता की ओर संकेत करता है कि यह सान्त जगत् अपने आप में यथार्थ नहीं है। विचार करने पर जिस विषय की आवश्यकता अनुभव होती है वह यह है कि हम एक निरपेक्ष यथार्थ सत्ता के अस्तित्व को मानने के लिये विवश हैं। जैसा कि डेस्कार्ट ने कहा है कि अनन्त रूप से पूर्ण सत्ता के भाव की धारणा तभी बन जाती है कि हमें अपनी परिमित शक्ति की स्वीकृति विवश होकर अंगीकार करनी पड़ती है। कोई भी यथार्थ में अभावात्मक निर्णय केवल अभावात्मक होता है। जहाँ कहीं हम किसी वस्तु का उसे अयथार्थ समझकर निराकरण करते हैं तो हम ऐसा किसी अन्य यथार्थ सत्ता के सम्बन्ध से ही करते हैं। कोई वस्तु नहीं है इसका तात्पर्य ही यह है कि किसी भावात्मक वस्तु का अस्तित्व भी अवश्य है। यदि हम यथार्थ तथा अयथार्थ दोनों को ही न मानें तो हम शून्यता पर जा पहुँचते हैं।

स्वामीप्रियतमानन्दसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र' दार्शनिका विद्या में 'ब्रह्मबोध की कविता के रूप में कमनीयता लेकर प्रकाशित हुआ है। कवि की वैराग्यध्वनि जगत् में ब्रह्म का माधुर्य लेकर बोध का उत्कृष्ट निवेश करती है।

भक्तस्तुतो भक्तपरः कीर्तिदीप्तिः वरप्रदः । क्षमाकान्तिर्भक्तश्चैव भक्तिमान् भक्तिवर्धनः।

दोषसमूहाहन्ता च दुर्जनस्य प्रमर्दनः । नरकस्य निहन्ता च बुद्धो मुक्तः शरीरमृत् ।

सहिष्णुः वेदवित्तमः शास्ता भोक्ता विशारदः । कारुण्यसागरः धीरः प्रकटः प्रीतिवर्द्धनः ॥

मनोवेगो मनोरूपो तेजोरूपो प्रजागतः । सूक्ष्मः सुखदः सुघोषः सारज्ञो निर्लेपः बुधः ॥ 2

जहाँ शंकर बौद्धमत के इस विचार में सहमत हैं कि सब वस्तुएँ बराबर परिवर्तित होती रहती हैं वहाँ वे एक इन्द्रियातीत यथार्थ सत्ता की मांग करते हैं जो परिवर्तनशील जगत् के अन्तर्गत नहीं है। हमें एक ऐसी वस्तु की यथार्थता की मांग है जिसे अन्य किसी वस्तु के समर्थन अथवा सहायता की आवश्यकता न हो। यहाँ तक यदि हम समस्त विश्व को केवल काल्पनिक ही मान लें तो भी उस कल्पना का कुछ न कुछ आधार होना आवश्यक है। क्योंकि कल्पनात्मक वस्तुएं भी बिना किसी आधार के मध्य आकाश में नहीं तैर सकतीं। यदि इस प्रकार की कोई यथार्थ सत्ता नहीं है अर्थात् जिसे हम यथार्थ सत्ता कह सकें। वेदों में जो धार्मिक अनुभव अंकित हैं वे हमें कम से कम इतना तो निश्चय के साथ बताते हैं कि ऐसी एक यथार्थ सत्ता है जो अनादि और अनन्त है। भारतीय कभी भी तात्विकीय प्रमाण के बंधन में नहीं फंसे सर्वथा अनुचित है। शंकर के लेखों में जहाँ ब्रह्म के विषय में तार्किक प्रमाण उपलब्ध है यह नि:संदेह तात्विकीय प्रमाण है। हम एक निरपेक्ष यथार्थ सत्ता की स्थापना करने के लिये विवश हैं, अन्यथा हमारे ज्ञान तथा अनुभव का पूरा ढांचा ही खण्डित हो जायेगा। प्रक्रिया की विधि में शंकर अत्यन्त मौलिकता तथा प्रत्यग्रता प्रदर्शित करते हैं। वे ईश्वरीय ज्ञान के अन्य दार्शनिकों को समान ईश्वर के गुणों के विषय में विचार विमर्श के साथ अपनी बात आरम्भ नहीं करते। वे उन हेतुओं की भी न केवल उपेक्षा ही करते हैं अपितु समीक्षा भी करते हैं। जो एक महान् प्रथम कारण और संसार के सृष्टा के पक्ष में उपस्थित किये जाते हैं। उनकी दृष्टि में अविकल अनुभव (साक्षात्कार) ही आधारभूत तथ्य है। यही सर्वोच्च धार्मिक अन्तर्दृष्टि है। यह मनुष्य की आध्यात्मिक यथार्थ सत्ता की अभिज्ञता का प्रमाण (यदि इसे प्रमाण की संज्ञा दी जाये) उपस्थित रहता है। ब्रह्म प्रत्येक मनुष्य के लिये सदा विद्यमान है और जीवन का सार्वभौम व्यापक तथ्य है। यदि इसके लिये किसी तर्कसम्मत प्रमाण की आवश्यकता हो तो शंकराचार्य निर्देश करते हैं कि मन सापेक्ष सत्ता में विश्राम नहीं पा सकता, अर्थात् अनुभव की व्याख्या ब्रह्म की धारणा के आधार के अतिरिक्त होना असम्भव है।

कारण के सिद्धांत का वर्णन करते हुए शंकर कारण संबंधी स्वरूप को स्वभाव अथवा सामान्य या व्याप्ति प्रतिपादन करते हैं, जबकि कार्य को एक उपाधि, अवस्था अथवा विशेष मानते हैं। इस जगत में अनेक सामान्य अपने विशेषों सहित हैं, चैतन्य सहित तथा चैतन्य विहीन। ये समस्त सामान्य अपनी श्रेणीबद्ध श्रृंखलाओं ने एक ही सामान्य में अर्थात् ब्रह्म की बुद्धि के पुंजस्वरूप के अन्तर्गत हैं और इसी रूप में उनका बोध ग्रहण होता है। इस सर्वव्यापक यथार्थ सत्ता के स्वरूप को समझ लेने का तात्पर्य यह है कि उसके अन्तर्गत जितने विशेषण हैं उन्हें भी समझ लिया।

ब्रह्म की यथार्थ सत्ता - 'स्वामीप्रियतमानंदसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र' ब्रह्म की यथार्थ सत्ता

को अभिव्यक्त करता है। ब्रह्म को यथार्थ सत्ता का नाम देने का तात्पर्य यह है कि वह प्रतीक रूप, दैशिक, भौतिक और चेतन जगत् सबसे भिन्न है। ब्रह्म वह है जिसके बारे में मान लिया जाता है। कि वह मूलभूत है। यद्यपि यह किसी भी अर्थ में द्रव्य नहीं है। इसके अस्तित्व के लिये किसी देश के भाग विशेष की आवश्यकता नहीं, यद्यपि यह कहा जा सकता है कि यह सर्वत्र विद्यमान है क्योंकि सब वस्तुयें उसकी ओर संकेत करती हैं तथा उसके ऊपर निर्भर करती हैं। चूँकि यह स्वयं कोई वस्तु नहीं है अन्य किसी वस्तु के साथ इसके दैशिक सम्बन्ध नहीं हो सकते। और इसलिये यह कहीं भी न हीं है। यह कारण नहीं क्योंकि उसका अर्थ होगा कालिक सम्बन्धों का समावेश। इसका स्वरूप अव्याख्येय है क्योंकि जब कभी हम इसके विषय में कुछ कहेंगे तो उसका तात्पर्य होगा कि हम इसे एक वस्तु का रूप दे देते हैं। हम इसके विषय में कथन कर सकते हैं यद्यपि हम इसका ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकते और न इसका तार्किक ज्ञान ही प्राप्त कर सकते है। यदि सीमित शक्ति वाला मनुष्य ब्रह्म को पूर्णरूप में समझ सकता है तो या तो हमारा बोध तात्विक रूप में अनन्त हो या फिर ब्रह्म अनन्त नहीं हो सकता। प्रत्येक शब्द जिसका प्रयोग किसी वस्तु का द्योतन करने के वास्ते किया जाता है, उस वस्तु का द्योतन किसी न किसी जाति (वर्ग) अथवा कर्म अथवा गुण अथवा सम्बन्ध की किसी वृत्ति विशेष के साथ साहचर्य युक्त रूप में करता है। ब्रह्म की कोई जाति नहीं उसमें कुछ गुण नहीं।

स्वामीप्रियतमानन्दसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र' संसारी जीवों को इंगित करता है कि देहधर्म का पालन निष्काम कर्म योग से ही करना चाहिये। देही शाश्वत है अनश्वर है। अनासक्त भाव से संसार की भौतिक समृद्धि का अवलोकन करें। समृद्धि परोपकार से ही स्वयं प्रकाशित होती है।

गुणेषु गुणवर्जितः विरक्तः प्रियवर्धनः। चौम्होंग्राममन्दिरे च बाबातिष्ठति कानने॥

पीत्वामृतं श्रुतिपयः स्मितचारुमुखाम्बुजः। भजति मारुतात्मजः सुवरः वायुविक्रमः॥

नमस्ते भक्तवत्सलः प्रसन्नमुखपंकजः। नमस्ते बाबासौरभं नमः कारुणिकोत्तमः॥

सुमतिः भीमविक्रमः वीरः वरः पदाम्बुजः। भूतले विनयान्वितः बाबा लोकपितामहः॥ 3

सुख का संग्रह ही बुद्धि को कलुषित करता है। सुख में किसी के अधिकारों का अतिक्रमण करना पड़ता है। मूलप्रकृति में रहते ही आत्मसुख की अनुभूति संभव है। वर्जनाओं को भंग करने वाला कष्ट पाता है। मर्यादा के उल्लंघन से विपत्ति आती है। अच्छे विचारक संसग्रह ही संतचरित है। जैसे दूध में मिलकर दूध, तेल में मिलकर तेल और जल में मिलकर जल एक ही हो जाते हैं, वैसे ही आत्मज्ञानी मुनि संसार में रहते हुए भी आत्मा में लीन होने पर आत्मस्वरूप ही हो जाता है-

क्षीरं क्षीरे यथा लिप्तं तैलं तैले जलं जले।

संयुक्ते मेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः॥ 4

REFERENCES

1. स्वामीप्रियतमानन्दसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र - श्लोक 5-6.
2. स्वामीप्रियतमानन्दसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र - श्लोक 188-191.
3. स्वामीप्रियतमानन्दसरस्वतीसहस्रनामस्तोत्र - श्लोक 100-103 4.
4. विवेक चूड़ामणि - श्लोक - 567 3.